REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 6 | MARCH - 2018

अलका सरावगी के उपन्यासों में नारी जीवन के नवीन दृष्टिकोण

डॉ. विदुषी आमेटा[1], आभा त्रिपाठी[2]
[1]सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी–विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, सिरोही (राज.)
[2]शोध छात्रा, हिन्दी–विभाग, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, सिरोही (राज.)

सारांश –

अलका सरावगी ने अपने उपन्यासों– 'कलि–कथाः वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी', 'कोई बात नहीं' तथा 'एक ब्रेक के बाद' के माध्यम से स्त्री की सामाजिक जीवन में दयनीय स्थिति, समाज द्वारा तिरस्कार, व्यथा, पारिवारिक जीवन की समस्याएं, यौन–जीवन में मुखर व दमित रूप, कुंठा व तनाव, शिक्षा तथा आधुनिक परिवेश में विघटित और तिरस्कृत स्त्री अस्तित्त्व का विश्लेषण करते हुए स्त्री की मनोदशा जैसी सामाजिक समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

अलका जी के उपन्यास स्त्री जीवन की सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रूप से प्रत्यक्ष करते हैं। साथ ही इनके उपन्यास स्वच्छंद जीवनशैली से उत्पन्न स्त्री की नवीन सामाजिक विचारधाराओं की अभिव्यक्ति करते हैं। जीवन की सामाजिक समस्याओं के समाधान का सबसे बड़ा हथियार स्त्री है। स्त्री को यह शक्ति इतनी आसानी से उपलब्ध नहीं होने वाली, इसके लिए उसे संघर्ष करना ही पड़ेगा।

शब्द कुंजी– समाज, नवीनता, आधुनिकता, दृष्टिकोण।

'उपन्यास' आधुनिक समय की बहुप्रचलित तथा लोकप्रिय विधा है। हिन्दी उपन्यास का आरंभ सामान्य जनजीवन से हुआ है। आधुनिक हिन्दी उपन्यासों के नवीनतम सामाजिक विचारों को आधुनिक बोध का उपन्यास कहा जा सकता है। औद्योगीकरण, बदलते हुए परिवेश, भ्रष्ट व्यवस्था, महानगरीय जीवन और यान्त्रिक सभ्यता के परिणाम से आज हमारे जीवन में अकेलेपन और निराशा ने स्थान ले लिया है। कुण्ठा एवं असुरक्षा की भावना ने हमें संत्रस्त कर दिया है। बीसवीं सदीं के नवें दशक में भारतीय साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव सामाजिक विचारधारा के कारण आया, जिसके कारण स्त्री ने साहित्य के केन्द्र बिन्दु से होकर मुख्य धारा में अपनी जगह बनायी। हिन्दी कथा साहित्य इससे सर्वाधिक प्रभावित हुआ।

भारत में स्त्री चेतना से जुड़ी सामाजिक विचारधाराओं के संघर्ष को व्यक्त करने वाली अनेक लेखिकाएँ हैं। उनमें से जिन्होनें विशेष रूप से स्त्री की सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है, उनमें मुख्य– प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा तथा अलका सरावगी है। अलका सरावगी ने समाज की उस व्यवस्था के स्वरूप को उजागर किया है, जिसमें विवाह के लिए कुलीन वर्ग की स्त्री की अनिवार्यता होती है, परन्तु किसी भी स्त्री को 'रखैल' रूप में रखने के लिए किसी कुल–गोत्र, मर्यादा की जरूरत पुरुष प्रधान समाज को नहीं होती है। स्त्री की इस स्थिति का कारण समाज की रूढ़ व्यवस्था है, जो समाज के शरीर पर दाग बनकर चिपकी हुई है। स्त्री एक ओर पुरुष की मानसिकता का शिकार है, वहीं दूसरी ओर उसके द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों की पीड़ा का दर्द भी झेलती है। जिसके अंतर्गत यौन–शोषण, बलात्कार आदि का शिकार औरतें ही होती हैं। अलका सरावगी इस सत्य का समर्थन करती है।

भारतीय संरचना में मर्यादाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक रूढ़ियों के चलते स्त्रियाँ अपने पति को संभालने, परिवार को चलाने और समाज को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। अल्पभाषी होते हुए भी स्त्रियाँ विसंगतियों से टक्कर लेने में पीछे नहीं रहती। स्त्रियाँ सामाजिक विमर्श को नया आयाम देते हुए नयी चेतना, नयी उमंग, ऊर्जा और जीवन में कुछ कर गुजरने की आकांक्षा से युक्त होती हैं। अलका सरावगी ने अपने उपन्यासों – 'कलि–कथा : वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी', 'कोई बात नहीं' तथा 'एक ब्रेक के बाद' के द्वारा मध्यम एवं उच्च–मध्यम वर्गीय जीवन जीने वाली आधुनिक स्त्रियों के सामाजिक जीवन दर्द को उजागर किया है। अलका सरावगी का पहला उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' में एक मारवाड़ी परिवार की पाँच पीढ़ियों की कथा है, जिसमें प्लासी के युद्ध से लेकर बाबरी मस्जिद के ध्वंस तक की कथा समाहित है। इस उपन्यास में मारवाड़ी समाज में स्त्रियों की घुटनभरी अंधेरी जिन्दगी का चित्रण है, जिसका केन्द्र किशोर बाबू की विधवा भाभी है।

मारवाड़ी समाज में विधवा स्त्री को बिना किनारी वाली सफेद साड़ियाँ पहनने के अलावा और कुछ पहनने का अधिकार नहीं होता था। किशोर बाबू की भाभी एक दिन जब यह सोचकर कि आज के जमाने में तो सभी पढ़े–लिखे तथा खुले विचारों वाले लोग है तो रंगीन साड़ी पहनने में क्या हर्ज है। अतः भाभी बहुत ही प्रसन्न मन से रंगीन साड़ी पहनकर शरमाती हुई जब कमरे से बाहर निकलती है, तभी किशोर बाबू अपनी सामाजिक रूढ़िगत मानसिकता के कारण यह स्वीकार नहीं कर पाते है और वे कहते है – ''तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी ? उम्र बढ़ने के साथ–साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है, पर मुझे लगता है यू. पी. वालों की अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक–मटक रंग की साड़ी पहनी है। क्या कहेगें लोग देखकर ? कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।'' इस प्रकार पुरुषसत्तात्मक समाज में एक विधवा स्त्री का अच्छे कपड़े पहनने भर से ही मर्यादा खत्म हो जाती है। आज भारतीय समाज में पुरूष वर्ग का नारी के प्रति ऐसा सामाजिक दृष्टिकोण है।

अलका सरावगी के 'कलिकथा : वाया बाइपास उपन्यास में सामाजिक रूढ़िवादी समाज की कथा ही नहीं है, इसमें भारतीय समाज की विसंगतियों वाली सामाजिक विचारधारा का वर्णन आज की आधुनिक परिस्थितियों के विपरीत है। सच क्या है ? यह किशोर बाबू जानते है। किशोर बाबू स्त्रियों के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति जागरुक तो है, किन्तु सामाजिक बेड़ियाँ उन्हें पुरातनता के खोल में लौट जाने पर विवश कर देती है। किशोर बाबू एक तरफ तो यह सोचते है कि हमारे घर की महिलाएँ कितनी विवश और परतंत्र है पूरे दिन घरों में बंद रहती है, उन्हें कहीं बाजार भी जाना होता है तो वे गर्दन तक घूँघट करके ही बाहर निकल पाती हैं, अर्थात उनकी स्थिति 'कूप मंडूकता' की तरह हो गई है। परन्तु किशोर बाबू की यह सोच तब बदल जाती है, जब उनकी विधवा भाभी सफेद साड़ी की जगह पर गुलाबी रंग की साड़ी पहनती है।

यह भारतीय मध्यमवर्गीय समाज का दिखावा है कि वह आधुनिक तो बनना चाहता है किन्तु समाज की बनाई सामाजिक रूढ़ियों के दायरे में रहकर। यही वजह थी जब किशोर बाबू को इस बात का अहसास भी नहीं होता कि उन्होनें प्रत्येक अवसर पर यह प्रमाणित करने की कोशिश की कि भाभी अब 'आउटडेटेड' होकर सठिया गई हैं और उनका दिमाग पूरी तरह काम नहीं करता।

अलका जी ने प्रमुख बात कही है कि ''युवावस्था में सामाजिक रूढ़ियों से लड़ने का जो उत्साह होता है, प्रौढ़ होने पर वह अपने पूर्वजों के बनाये रास्ते पर ही चलना पसन्द करता है। इसलिए जब किशोर बाबू बीती घटनाओं का विश्लेषण करते है तो अपने प्रत्येक कृत्य को सही ठहराने का प्रयास करते हैं। अतः इसके लिए उन्हें कुतर्कों का सहारा भी लेना पड़ा। जैसे– ''किशोर बाबू आज पीछे पलटकर देखते हैं, तो उन्हें नहीं लगता कि उन्होनें कोई गलती की। एक से एक किस्से मालूम हैं। उन्हें लोगों के वे कदम फूँक–फूँककर धरते रहे, तो इसमें क्या गलत था ? आखिर रूपन देवल कितनी भी बड़ी अधिकारी क्यों न हों गई हो, परन्तु रही तो औरत की जात ही न ?''

पश्चिमी बंगाल के कोलकाता में रहते हुए किशोर बाबू को मारवाड़ी समाज की स्त्रियों की पिछडी स्थिति पर शर्म महसूस होती है। वे अपने समाज की रूढ़ियों घूँघट प्रथा, नाक छिदवाना आदि का विरोध करते हैं। किशोर बाबू अपनी लड़कियों को पढ़ाने का फैसला करते है तथा सभी लड़कियों को कॉलेज भी भेजते है। उनमें से दो बहनों ने बी.ए. पास किया। शेष सभी की बीच में शादी हो गई। उन्होनें अपनी बेटियों को पढ़ाया–लिखाया, परन्तु उनको हमेशा एक सीमा में ही रखा।

किशोर बाबू सोचते है कि ''पिंजरे के पक्षी को जन्म से ही पिंजरे में रखा जाए, तो कष्ट नहीं समझता, परन्तु एक बार खुले आकाश में छोड़कर पिंजरे में बंद कर दें, तो वह अपना खाना–पीना छोड़ देता है। आखिर लड़कियों को पराए घर जाना है, घर–गृहस्थी संभालनी है। ज्यादा पर निकाल लिए, तो मुसीबत हो जाएगी।'' किशोर बाबू लड़कियों के ज्यादा पढ़ने का भी विरोध करते हुए कहते है कि ''लड़कियाँ अगर ज्यादा पढ़ लेती तो ज्यादा पढ़े–लिखे लड़के की आवश्यकता होती, आखिर संभालती तो घर–गृहस्थी ही है। लड़कियों को कोई हुंडी का भुगतान थोड़ी ही करना है।''

बदलते परिवेश के कारण किशोर बाबू भी अपनी पत्नी में स्वतंत्र व्यक्तित्त्व का विकास करना चाहते थे। परन्तु उनकी समस्त चेष्टाओं के बाद भी उनकी पत्नी के व्यक्तित्त्व का विकास नहीं हो पाया। इसका कारण वे स्वयं को मानते हैं ''इसलिए कि तुमने मेरी नकेल हमेशा अपने हाथों में कसकर पकड़ रखी। कभी अपने आप कोई निर्णय नहीं लेने दिया चाहे कितनी भी छोटी से छोटी बात क्यों न हो।'' वे हमेशा अपनी पत्नी को चाबी की गुड़िया की तरह चलाते रहे। अपनी पत्नी की काबिलियत पर कभी विश्वास नहीं किया।''

सदियों से दुनिया समस्याओं के तात्त्कालिक समाधान को अपना उद्देश्य मान बैठी है। समस्या की जड़ पर आघात करके उसे पूर्ण नष्ट करने की ओर उसकी दृष्टि प्रायः जाती ही नहीं, सभी समस्याओं की जड़ इसी में है। इस सन्दर्भ में समस्या के पथ को बंद कर नया पथ खोल लेना समस्या को सरल बनाने से अधिक और कुछ प्रतीत नहीं होता। इसलिए उपन्यास के अंतिम भाग में शांतनु किशोर से कहता है– ''देखो, एक रास्ता जाम होता था, तो हम दूसरा बना लेते थे। हमने किसी समस्या के कारणों को मिटाने की कभी कोशिश नहीं की हर समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूँढ़ते रहे पर अब तो कोई बाइपास काम नहीं कर सकता।''

अलका सरावगी कुछ आवश्यक बातों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है कि व्यक्ति विशेष हो या सरकारी। सामाजिक समस्या सर्वत्र विद्यमान होती है। हम किसी भी समस्या का समाधान या तो पश्चिमी मॉड़ल में खोजने के अभ्यस्त हैं या फिर शार्टकट इलाज के माध्यम से उस समस्या को कुछ दिनों के लिए हाशिए पर रख देने के हामी हैं। इस संदर्भ में लेखिका का यह सवाल अत्यधिक उपयुक्त बन जाता है कि जब बाइपास के सभी रास्तें, नलियाँ बंद हो जायेगी उस समय तुम क्या करोगें ? राजनैतिक सत्ता द्वारा लागू किये गये सोवियत मॉड़ल के विफल होने के बाद भूमंडलीकरण के पूँजीवादी मॉड़ल और तथाकथित उत्तर आधुनिक परिवेश में बदलते मूल्यों के बहाने लेखिका आगाह करती है कि यदि हम अपनी जरूरतों के मुताबिक मॉड़ल विकसित न कर सके तो इस शरीर को बचाने के लिए कोई मॉड़ल रूपी दवा काम नहीं करेगी और वह दिन सर्वाधिक डरावना होगा। अतः कहा जा सकता है कि यह उपन्यास बाइपास की जगह पर 'सीधे रास्ते' की जरूरत पर जोर देता है और उन पारम्परिक मूल्यों के संघर्ष, सामाजिक रूढ़िवादी विचारों की जाँच करता है।

अलका सरावगी के दूसरे उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में लेखिका जहाँ एक ओर स्त्री मन की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति करती है, वहीं पूर्ण संवेदना तथा साहस से स्त्री शोषण की विभीषिका को भी उद्‌घाटित करती है। 'शेष कादम्बरी' के माध्यम से अलका सरावगी ने तीन पीढ़ियों के द्वारा स्त्री जीवन की विविध सामाजिक समस्याओं का यथार्थ रूप ही सामने नहीं रखा बल्कि अबला कही जाने वाली स्त्री के सशक्त व जुझारू व्यक्तित्त्व को भी दर्शाया है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र रूबी दी की स्मृतियों, सपनों, कादम्बरी से फोन पर की गई बातचीत, उसके पत्रों आदि के माध्यम से कही गई 'शेष कादम्बरी' की कथा का केन्द्र भी नारी उत्पीड़न है।

रूबी दी के माध्यम से कोलकाता के मारवाड़ी समाज में स्त्री के प्रति सामाजिक विचारधारा और भारतीय परिदृश्य में नारी जागृति की ऐतिहासिक विवेचना को देखा जा सकता है। रूबी दी उपन्यास में एक ऐसे पात्र के रूप में उपस्थित है, जो न पुरुष शासन से शोषित है, न किसी से दमित जीवन जीती है, वह स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जीती है। रूबी के माध्यम से अलका सरावगी ने स्त्री से जुड़े प्रश्नों को उभारा है, स्त्री के जीवन की नियति की ओर संकेत करते हुए लिखा है ''ऐ औरत तूने जब भी किसी कोने में पुरुष से अलग अपना कुछ बनाया है तो तुझे इसकी कीमत देनी पड़ी है।''

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में मारवाड़ी समाज का सच विविध रूपों में सामने आता है। रूबी दी की दुनिया का सच हमारे समाज का सच सिद्ध होता है जैसा की उपन्यास में बताया गया है कि ''क्यों नहीं सोचा कि सुधारक आप लड़के का ब्याह करते समय हो सकते हैं, लड़की का ब्याह करते समय नहीं। आप दुनिया की रस्मों को न मानकर अपने को दुनिया से अलग और ऊपर समझ सकते हैं, परन्तु उसमें आप दुनिया से बच नहीं सकते'' रूबी दी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण प्रेरणादायी व्यक्तित्व के रूप में सामने आया है। वे जीवन में

सभी प्रकार की तकलीफों, कष्टों व अकेलेपन को झेलती हुई मानती हैं कि जीवन है तो उसका कोई अर्थ अवश्य होता है, समझ में आए या न आए। उसे अपने मन में खत्म करना कभी सही नहीं हो सकता। उपन्यास के अन्य पात्र सविता, माया बोस, फरहा, कादम्बरी आदि स्त्री के अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाने और साथ ही स्त्री के यथार्थ की आवाज बुलन्द करने में सक्षम हैं। समय के साथ स्त्री के प्रति सामाजिक स्थिति में आए बदलाव को अलका जी ने बारीकी से स्पष्ट किया है।

अलका सरावगी का तीसरा उपन्यास 'कोई बात नही' में मुख्य रूप से शारीरिक रूप से अक्षम एक बेटे शशांक और उसकी माँ के प्रेम और दुःख की साझीदारी की कहानी है। शशांक का जीवन कई तरह की कथाओं से घिरा हुआ होता है। शशांक के जीवन की कथाओं के माध्यम से अलका सरावगी शशांक की माँ, मौसी, दादी आदि स्त्रियों की जिन्दगी की कहानियाँ कहती हुई समाज में स्त्रियों के प्रति सामाजिक विचारधारा पर प्रकाश डालती है। अलका जी का यह उपन्यास एक मंत्र के समान है जैसे– हार न मानने की जिद और नई शुरुआतों के नाम। समय के एक ऐसे दौर में जब प्रतियोगिता जीवन का परम मूल्य है और समस्त निर्णय ताकतवर और समर्थ के हाथ में हैं, वेदना, जिजीविषा और सहयोग का यह आख्यान ऐसे समस्त मूल्यों का प्रत्याख्यान है।

समाज में दहेज की समस्या स्त्री जीवन में प्राचीनकाल से चली आ रही है। शशांक की दादी बताती है कि सर्वगुण सम्पन्न होने के बावजूद भी उनका विवाह दहेज की वजह से बहुत मुश्किल से हुआ था– ''उस जमाने में बिना माँ की बेटी का ब्याह होना आसान नहीं था ? माँ के बिना कौन दहेज–दायजा देता ? शादी के बाद कौन लाड़–प्यार करता ? वे बताती है कि उनके कोई भाई नहीं था, अतः जब लड़की की शादी होती है तब बहन को चुनड़ी ओढ़ाने के लिए भाई चाहिए होता है। इस प्रकार माँ–बाप के बाद पीहर भाइयों से ही पहचाना जाता है।'' शशांक इसलिए सोचने के लिए मजबूर हो जाता है कि ''लड़की की शादी के समय बीस साल बाद उसके बच्चों की शादी के समय चूनड़ी ओढ़ाने के लिए भाई की भी चिंता उसी समय कर ली जाती है ?'' आज शिक्षित समाज में भी मनुष्य ऐसी छोटी मानसिकता लिए जी रहा है।

शशांक की दादी का विवाह पन्द्रह साल की उम्र में एक रूढ़िवादी परिवार में हुआ जहाँ उन्हें अपने कमरे में जाने के लिए सास–ससुर के कमरे से होकर जाना होता था। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने कमरे में जाने के लिए भी किसी के साथ की जरूरत होती थी। बड़ों के सामने मुँह खोलना उस जमाने में कोई सोच भी नहीं सकता था। शशांक की दादी उसे बताती है कि सामाजिक रूढिवादी विचारों के कारण ''बंगाल में कोई अपनी लड़की का नाम सीता नहीं रखता था क्योंकि सीता ने सारा जीवन दुःख ही दुःख झेला था लेकिन मेरी माँ ने मेरा नाम पता नहीं क्या सोचकर सीता रख दिया।'' दादी अपने जीवन के माध्यम से स्त्री जीवन के सच को बताती है। स्त्रियों की परिवार में स्थिति को बताते हुए अलका सरावगी ने लिखा है– ''औरत की जिन्दगी भी क्या है ? सचमुच। बीस साल भी वह पराए घर की ही रहती है। यहाँ तक कि अपने बच्चों की नजर में भी।''

अलका सरावगी का चौथा उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में कॉरपोरेट दुनिया के स्त्री चरित्रों का चित्रण अपने आप में सामाजिक विचारधारा को नई दिशा देता है। इस उपन्यास में भट्ट और उसकी पत्नी के माध्यम से अलका सरावगी, स्त्री की सहनशीलता पर प्रकाश डालती है– ''भट्ट जानता था कि उसकी पत्नी उससे वह सवाल नहीं पूछेगी जो हर घड़ी पूछना चाहती थी – और कितना दुःख दोगे मुझे ? या फिर और कितना भटकोगे और भटकाओगे इस तरह ?'' इसलिए भट्ट सोचता है कि सचमुच, मेरा भारत महान है क्योंकि यहाँ ऐसी पत्नियाँ मिलती हैं। भट्ट सोचता है कि वह अपनी पत्नी पर कभी उस तरह तानाशाही नहीं चलाएगा जिस तरह दुनिया में पिताजी जैसे तमाम पति अपनी पत्नियों पर चलाते आए हैं और चलाते रहेगें।

उपन्यास के अन्य पात्र के. वी. की पत्नी 'सोशल वेलफेयर होम' के सिलसिले में बंगाल के मुख्यमंत्री तक सम्मान ले चुकी थी। वह पढ़ी–लिखी महिला थी। किसी जमाने में उनकी बोलने और समझने की प्रतिभा पर रीझकर स्वयं के. वी. उनके प्रेम में पड़े थे। लेकिन के. वी. अपनी रूढ़िगत सोच से उभर नहीं पाता– के वी. की पत्नी ने इन दिनों ध्यान दिया था कि के. वी. उन्हें जब भी कोई नई बात समझाते हैं, इस तरह बोलते हैं जैसे वे कोई अनपढ़–गंवार महिला हो। यहाँ तक कि के. वी. ने अपने बेटे को भी अपनी तरह बात करना सिखा दिया था। वह छोटा सा लड़का भी कुछ पूछने पर उनसे ऐसे बात करता था, जैसे वे दसवीं फेल हों और उनमें कुछ भी समझने की योग्यता न हो। के. वी. की पत्नी ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि के. वी. का छुपा हुआ ब्राह्मणवाद यानी दूसरों से ऊँचा होने का अहंकार उनके बेटे पर भी हावी हो जायेगा। के. वी. की पत्नी सोचती है – ''इन पुरुषों का अहंकार कभी कम होने वाला नहीं है। विश्व की बुरी हालत इन्हीं लोगों के कारण है।

सभी लड़ाई–झगड़े खत्म हो जाएं, अगर ये लोग अपने को उतना ही काबिल समझने लग जाएं जितने की असल में हैं।''

अलका सरावगी की विशेषता यह रही है कि वे स्त्री के प्रति सामाजिक रूढ़ियों की प्रचारित और प्रचलित छवि को तोड़ती है। वे अपने उपन्यासों के माध्यम से पुरुषों द्वारा नवीन सामाजिक विचारधारा के साथ स्त्री जीवन के समस्त पक्षों पर सोचने के लिए मजबूर करती है, जिससे उनके उपन्यास स्त्री जीवन की सामाजिक समस्याओं को उकेरने वाले महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बन जाते हैं।

वर्तमान में स्त्रियों की अपने आप को संगठित करने की क्षमता बढ़ रही है तथा सुदृढ हो रही है। वे सामाजिक स्थिति और परिवार, समाज में भूमिका के आधार पर निर्धारित संबंधों को दरकिनार करते हुए आत्मनिर्भरता को विकसित कर रही है। अब स्त्रियों को साहस दिखाकर ऐसे मामलों का प्रतिकार करना होगा और हौसले भरा कदम उठाना होगा। जरूरत इस बात की भी है कि इन पीड़ादायी घटनाओं को छोटी बात न समझा जाए और इनका सामूहिक विरोध किया जाए, ताकि स्त्रियों के प्रति हो रहे सामाजिक भेदभाव में कमी आ सके। हम सभी को मिलकर आगे बढ़ना होगा तथा स्त्रियों के हितों, उनके सम्मान, उनके अधिकारों की रक्षा करनी होगी तभी स्त्रियों के प्रति सामाजिक रूढिवादी विचारों एवं दृष्टिकोण में कमी होगी।

सन्दर्भ सूची –

1. कलिकथाः वाया बाइपास – अलका सरावगी, आधार प्रकाशन, पंचकूला।
2. शेष कादम्बरी – अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. कोई बात नहीं – अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. एक ब्रेक के बाद – अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. हिन्दी साहित्य की भूमिका – हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास – हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. – डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, ए–95, सेक्टर–5, नोएडा।
8. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. साहित्य और इतिहास दृष्टि – मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, संस्करण – 1912
11. प्रतियोगिता साहित्य सिरीज (हिन्दी), डॉ. अशोक तिवारी।